A First EPQRST Journal-www.jahnavisanskritejournal.com, Issue-17th, Vol.-V, 14.1.14

ISSN 976-8645

भारतीय दर्शन में काल की अवधारणा

अमरजी झा

कूटशब्द *काल, ईश्वरकृष्ण, वाक्यपदीय, न्याय,वेदान्त, बोद्ध, जैन।*

भारतीयदर्शन में कालवैदिक काल विचारणीय विषय रहा है। अथर्ववेदके कालसूक्त में काल परमतत्व माना गया उपनिषद् साहित्य में काल को सृष्टि कर्ता कहा गया है। इसी समस्त भारतीयदर्शन सम्प्रदायोंमें कालतत्व का प्रतिपदिन किया गया। प्रस्तुत पत्र में सांख्य, योग, न्यायवैशे षिक, अद्वैत, बौद्ध तथा जैन दर्शनों में प्रति-पादित काल के स्वरुप को उपस्थापित किया जा रहा है।

भारतीय दार्शनिक वाङ्मय में आस्तिक व नास्तिक दोनों ही संप्रदायों में कालतत्त्व का चिंतन प्राप्त होता है। जिसमें कुछ प्रमुख दार्शनिक मतों का विवेचन निम्नलिखित है।

सांख्य मत

ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में काल की चर्चा नहीं की है तथा सांख्यतत्त्वकौमुदी में भी स्पर्शमात्र किया है। सांख्य में काल को मूलतत्त्व के रूप में स्वीकार न करके इसे परिणाम (Concrete Becoming) माना गया है।[1] इसके विपरीत वैशेषिक दर्शन में काल को नित्य व विभु माना गया है, क्योंकि सांख्या में प्रकृति का सदृश परिणाम माना गया है क्योंकि किसी स्थिर, अपरिवर्त्तनशील से गतिशील, परिवर्त्तनशील की सृष्टि संभव नहीं है। अत: इसे मूल तत्त्व नहीं माना है। वैशेषिक मत के विपरीत वाचस्पति मिश्र ने भी काल को एक न मानकर व्यवहार हेतु उपाधिगत भेद माना है।[2] हेलाराज ने भी सांख्य के इस मत को पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थापित किया है कि क्रिया–आदि काल का उपाधि रूप में व्यवहार सुलभ होता है। क्योंकि अभिन्न काल अर्थात् उपाधिरहित काल से व्यवाहर संभव नहीं है।[3]

आचार्य भर्तृहरि ने काल के इसी संकल्पना को उद्धृत किया है जिसके अनुसार काल नाम की कोई बाह्य सत्ता नहीं है। अर्थात् यह एक मानसिक संकल्पना मात्र है क्योंकि इसकी बाह्यार्थता स्वीकार करने पर इसकी अभिन्नता व एकत्व होने से जगत्–व्यवहार संभव नहीं हो पाएगा। इस

ISSN 976-8645

प्रकार काल बुद्ध्यनुसंहारात्मक है।[4] अम्बाकर्त्रीकार रघुनाथ शर्मा ने भी स्पष्ट किया है कि बुद्धि द्वारा चिर, क्षिप्र, अहोरात्रादि भेद से क्रियाओं का संकलनात्मक रूप काल कहलाता है तथा इसकी बाह्य सत्ता नहीं है।[5]

परवर्ती सांख्याचार्यो ने यथा वाचस्पति मिश्र एवं विज्ञानभिक्षु ने काल को स्वतंत्र तत्त्व के रूप में स्वीकार करना आवश्यक बताया है। विज्ञानभिक्षु ने तो सांख्यप्रवचनभाष्य में काल को आकाश की तन्मात्रा माना है।[6]

ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में बाह्यकरणों की प्रवृत्ति का विषय केवल वर्तमान काल को माना है तथा आभ्यन्तर करण (मन, बुद्धि, अहंकार) की प्रवृत्ति का विषय तीनों काल भूत, भविष्यत् तएवं वर्त्तमान को माना है।[7] इस पर टीका करते हुए वाचस्पति मिश्र ने सांख्या में काल को तत्त्व रूप में परिगणित करने की आवश्यकता बतलाई है।[8]

योग मत

सांख्य दर्शन के समान ही योगदर्शन भी काल को अभिन्न मानता है। योग दर्शन में '**योगः चित्तवृत्तिनिरोधः**' में संकेत किया गया है कि यह कालातीत होता है, इस ध्यान में लीन व्यक्ति को दिन-रात का भी ध्यान नहीं रहता है।[9] योग सूत्र में परिवर्त्तन से अभिप्राय है धर्म, लक्षण एवं अवस्था परिणाम।[10] योगभाष्य में कहा गया है कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड एक क्षण में परिवर्त्तित हो सकता है।[11] अर्थात् इसमें क्षण विशेष में परमाणु का स्थानान्तरण होने से परिवर्त्तन होता है।[12] योग सूत्र में स्पष्टतः क्षण व क्रम रका वर्णन मिलता है जब परमाणु पूर्व देश को छोड़कर उत्तर देश के साथ संयोग प्राप्त करता है उस क्षण के काल कहते हैं तथा इसी क्षण के निरंतर प्रवाह को क्रम कहते हैं।[13]

यह काल वस्तुशून्य होता है इसका बौद्धिक समाहार नहीं होता है तथा कभी दो क्षण एक साथ नहीं रह सकता है। दूसरे शब्दों में मूहूर्त्त, अहोरात्रादि नाम क्षणों के क्रमों के समाहार को दिया गया है।[14]

आचार्य भर्तृहरि ने भी वाक्यपदीय में योगदर्शन के इस मत को उद्धृत किया है कि काल बुद्धिगत होता है, शब्द ज्ञान की आनुपातिक व केवल भ्रान्तिवश वस्तुरूप में प्रतीति होती है।[15] हेलाराज ने योग के इस मत को रमणीय कहा है कि काल बुद्ध्यानुगत चिरक्षिप्रवर्त्तमानादि भेद स्वभावरूप है।[16]

भर्तृहरि ने इस क्षणसन्तान के संकलन बुद्धि द्वारा गृहीत तथा युग, मन्वन्तर, मासादि रूप में व्यवहृत बताया है।[17] हेलाराज के अनुसार इसमें अपचय काष्ठगत क्षण आदि का तथा उपचयकाष्ठागत

ISSN 976-8645

मन्वन्वनर आदि रूप में एक ही काल की बुद्धि द्वारा कल्पना की जाती है।[18] योगवशिष्ठ में काल को संकल्प मात्र में माना गया है।[19]

इस प्रकार योग में काल की संकल्पना प्राप्त होती है। जिसमें काल की लघुता व दीर्घता को अनुभव सापेक्ष बताया गया है तथा योग प्रक्रिया में प्राण संचार से काल की गणना द्रष्टव्य है।[20] लोकव्यवहार में भी प्राणगति से कालगति की गणना देखा जाता है।

भर्तृहरि ने योगसूत्र 3.13 पतञ्जलि के मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि धर्मी के भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीन मार्ग होते हैं इसमें अवस्थाभेद होता है न कि द्रव्यभेद। इसमें धर्मी पद से मृत्तिकारूप भाव का ग्रहण किया जाता है तथा धर्म से घटादि का। अभिप्राय है कि घट का भूत, वर्त्तमान, भविष्य आदि अवस्थाभेद होता है, धर्मी का नहीं।[21]

न्याय एवं वैशेषिक मत

न्याय वैशेषिक काल की बाह्य सत्ता मानते है। काल एक स्थैतिक पृष्टभूमि है जिसमें कोई घटना घटती है तथा कालक्रम निर्धारित होता है। यह कोई रंग आदि की तरह बाह्यनुभव की वस्तु नहीं है तथा न ही इसका अन्तः प्रत्यक्ष होता है तो फिर इसका ज्ञान किसा होता है ? इसके उत्तर में वैशेषिक कहते हैं कि यह अनुभव से प्राप्त होता है, जिसमें परत्व, अपरत्व, यौगपद्य, अयोगपद्य, क्षिप्रत्व व चिरत्व आदि काल के अनुमान का लिङ्ग होता है।[22]

नैयायिकों ने काल को द्रव्य पदार्थ के अन्तर्गत द्रव्य रूप में परिगणित किया है।[23] तथा काल को अतीतादिव्यवहार का हेतु माना है।[24] काल किसी भी कार्य के लिए साधारण कारण है। न्याय-वैशेषिक में काल को नित्य, एक तथा विभु कहा गया है जिसका भर्तृहरि ने उल्लेख किया है।[25]

हेलाराज स्पष्ट करते हैं कि वैशेषिक मत पर-अपर आदि प्रत्यय लिङ्ग वान, व्यापक, एक, अमूर्त्त, नित्य, जन्म-मृत्यु आदि द्वारा भाव परिच्छदेक किया है।[26]

भर्तृहरि ने काल को ईश्वर में ही अन्तर्भाव माना है। उनके अनुसार संसार में दिक्, काल आदि प्रकृति व चेतन प्राणी का संस्थापक परब्रह्म ही है।[27] कालविच्छेदरूप से वह एक ही पूर्वापर दोनों रूप में दिखाई देता है।[28]

भर्तृहरि के इसी मत को परवर्ती नैयायिक रघुनाथशिरोमणि ने प्रतिपादित किया है कि दिशा व काल ईश्वर के अतिरिक्त नहीं है जो कि निमित्तविशेष के अवधान से ईश्वर से ही कार्यविशेषों की उत्पत्ति करता है।[29]

न्यायमञ्जरीकार कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कालसापेक्ष अनुभव होता है यथा-घटो वर्त्तते आदि, परन्तु काल का अनुभव स्वयं इसके द्वारा नहीं होता है।[30]

ISSN 976-8645

इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृहरि ने न्याय–वैशेषिक के काल की अवधारणा को प्रमुखता से विवेच्य विषय के रूप में लिया है।

अद्वैत वेदान्त मत

वैशेषिक के विपरीत अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म को कालरहित माना है, काल को स्वतंत्र द्रव्य मानने से द्वैत हो जाएगा। अत: इसमें ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य सभी को आभासमात्र माना गया है। अद्वैतवेदान्त का परमतत्त्व परिवर्त्तन रहित होने से कालरहित है। अत: आरंभ, अंत, रूपान्तरण आदि वास्तविक न होने से काल का प्रश्न ही नहीं उठता है।[31] डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार भी काल की अवधारणा वास्तविक नहीं माना है।[32]

अद्वैत वेदान्त में न्याय–वैशेषिक के काल की वास्तविक अवधारणा का पूर्णत: खंडन किया गया है।[33]

भर्तृहरि वाक्यपदीय के का. 3.9.62 में काल के संदर्भ में अद्वैत मत को उद्धृत करते हैं। हेलाराज के अनुसार ब्रह्मतत्त्व निष्क्रय होता है परन्तु अविद्याजन्य विवर्त्त भी देश एवं काल में ही संभव है परन्तु काल की प्रातिभासिक सत्ता होती है, जो कि परब्रह्म पर अध्यारोपित होती है। अविद्या के कारण ही जागतिक भेद दिखाई देता है तथा ऋत का विभाग भी अविद्या से ही होता है तथा अविद्याभूत सभी प्रपञ्चो का अर्थात् कालादि का उपादानभूत अविद्या का विद्या से निवर्त्तन हो जाता है। अत: विद्या से काल का भी ब्रह्म में अन्तर्भाव हो जाता है।[34]

जैन एवं बौद्ध मत

जैन एवं बौद्ध दर्शन में भी कालतत्त्व का वर्णन मिलता है। जो निम्न प्रकार से वर्णित है–

जैन

जैन धर्म के छह पदार्थ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल है।[35] इसमें काल अनस्तिकाय द्रव्य के रूप में परिगणित है। क्योंकि जैन मत में काल केवल देश मात्र है जिसके अणु एक दूसरे से संयुक्त नहीं होता है।[36] जैन दर्शन में काल को उर्ध्व प्रचयात्मक कहा गया है। इसमें निमिष, काष्ठ, कला, नालि, मूहूर्त, ऋतु, आयन, संवत्सर आदि का प्रयोग मिलता है।

जैन दर्शन में काल को पदार्थ के परिवर्त्तन का सहकारी कारण माना गया है।[37] व्यवहार–कला के रूप में इसका मिनट, घंटा आदि में मापन किया जाता है[38] तथा द्रव्य कला आभूषणादि के विशेष भाग को कहा जाता है। पर्याय काल के अन्तर्गत उत्पत्ति एवं लय को ही उत्पाद व व्यय कहा जाता है।

ISSN 976-8645

बौद्ध मत

बौद्ध दर्शन में क्षणिकवाद का चरमोत्कर्ष है। जिसमें प्रत्येक वस्तु परिवर्त्तनशील रहती है। बौद्ध दर्शन में सर्वस्थितिवादी ने जाति, जरा व नाश चार प्रकार की अवस्था माना है। परवर्ती थेरवादियों ने उप्पाद (उत्पाद), थिति (स्थिति) तथा भंग (नाश) को माना है। सौत्रान्तिकों ने दो अवस्था, उत्पाद व व्यय माना है तथा स्थिति व नाश का खंडन किया है।[39] पूर्वपक्ष द्वारा समय-मापन, दिन, रात, मासादि का नागार्जुन ने खंडन किया है उनके अनुसार काल की स्थिति भी क्षणिक है।[40]

निष्कर्ष रूप में प्राचीन बौद्धों ने अनुभवगम्य तथा व्यावहारिक रूप में काल की अवधारणा मानी है। अभिधम्मवादियों ने इसे काल्पनिक दृष्टि से निरपेक्ष माना है तथा माध्यमिकों ने काल के अतीन्द्रिय होने के कारण इसकी वस्तुनिष्ठ सत्ता का वास्तविकता का खंडन किया है।

अन्तटिप्पणी

1. Anindita Niyogi Balsev, A Study of Time in India Philosophy, MLBD, Delhi, 1999
2. कालश्च वैशेषिकमते एको न अनागतादि व्यवहारभेदंप्रवर्त्तयितुर्महति। तस्मादयं यैरूपाधिभेदैरनागतादि भेदं प्रतिपद्यते, सन्तु तु एवोपाधय: येऽनागतादिव्यवहारहेतव: कृतमन्तर्गडुनग कालेनेति सांख्याचार्या:। सां. का. 33 पर, सां. त. कौ.,
3. अत्र तु केचिद् विप्रतिपद्यन्ते, अभिन्नेन कालेन व्यवहर्त्तुमशक्यत्वाद् य एव तदभेदोपाधि: क्रियादि परिकल्प्यन्ते, स एव व्यवहारनिमित्तं, किमदृश्यमानेनानुपभेन कालात्यना कृत्यमित्यादि वदन्त:। वा. प., हेलाराज, पृ. 548
4. कालाभि: पृथगर्थाभि: प्रविभक्तं स्वभावत:। केचिद् बुद्ध्यनुसंहारलक्षण तं प्रचक्षते।। वा. पं. 3.9.57
5. केचिद् वादिन् पृथगर्थाभि: बुद्धयनुसंहारलक्षणादबहिस्तत्त्वात् कालात् परस्परतश्च चिरक्षिप्रादिभेदैरहो-रात्रादिभेदैश्च प्रविभक्तं बुद्ध्यनुसंहारलक्षणं-क्रियाणां बुद्ध्यानुसंहार: संकलन तल्लक्षणं तं कालं प्रचक्षते। वही 3.9.57 पर अम्बाकर्त्री टीका
6. Anindita Niyogi, Balsev, A study of time in Indian Philosophy, p. 48

Footnotes

ISSN 976-8645

7. अन्तः करणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाव्यम्। साम्प्रत्कालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्।। सां. का., का. 33
8. Vachaspati Mishra in his commentary..... admits of a seporate called time, Anindita Niyogi, Balsev, A study of time in Indian Philosophy, p. 48
9. योग, वशिष्ठ 3.60, 25-6
10. योगसूत्र 3.13
11. तेनैकेन क्षणेन कृत्स्नो लोकः परिणामनुभवति। योग सूत्र, 3.52 पर व्यास भाष्य
12. In other words, the contention is that "The collection of atoms at any moment in idfferent from what it was at the previous moment. History of Indian Philosophy by S.N. Das Gupta, Vol. 1, p. 256अ
13. योगसूत्र, 3.52
14. (क) क्षणस्तु वस्तुपतितः क्रमावलंबी, वही
    (ख) स खल्वयं कालो वस्तुशून्यो बुद्धिनिर्माणाः शब्दज्ञानानुपत्ति,वही
    (ग) न च द्वौ क्षणौ सह भवतः। योगसूत्र, 3.52 पर व्यासभाष्य, वही
15. ज्ञानुगतशक्तिं वा बाह्यं वा सत्यतः स्थितम्। कालात्मानमनाश्रित्य व्यवहर्त्तुं न शक्यते। वा. प. 3.9.58
16. तत्र यथायोगमविचारितमणीयः कालोऽभ्युगन्तव्य इत्यर्थः। वही, हेलाराज टीका, पृ. 550
17. बुद्धयवग्रहभेदाच्च व्यवहारात्मनि स्थितेः। तावानेव क्षणः कालो युगमन्वन्तराणि वा।। वा. प. 3.8.68
18. अपचयकाष्ठागतस्तु क्षण इत्युपचकाष्ठाप्राप्तो मन्वन्तरमित्यादीति भावतो द्रव्यभूतस्यैकत्वेऽपि कालस्य कल्पनेयं बौद्धी। वही, प्र. प्र., पृ. 562
19. विप्रसंकल्पमात्रोसौ कालो ह्यात्मनि तिष्ठति। यो. व 5.49.4
20. देश दैर्ध्यं यथा नास्ति कालादैर्ध्यं तथाङ्गने। वही 3.20.22
21. तदुक्त पातञ्जले "धर्मी त्र्यध्वा धर्मास्त्र्यध्वानस्ते तल्लक्षितास्तां प्राप्नुवन्तोऽन्त्यत्वेन प्रतिनिर्धिश्यते अवस्थान्तरतो न द्रव्यान्तरतः (य. द. 3.13) इति, वा. प. पर प्र. प्र. 3.9.61, पृ. 552-553

ISSN 976-8645

22. कालः परापरव्यतिकरयौगपद्यचिरक्षिप्रप्रत्ययलिङ्गम्। तेषां विषयेषु पूर्व प्रत्ययविलक्षणनामुत्पत्तौ अन्यनिमित्ताभावात् यदत्रनिमित्तं सः कालः। प्र. भा. 332
23. तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्मनि मनांसि नवैव, त. सं., पृ. 5
24. अतीताऽदिव्यवहारहेतुः काल। त. सं., पृ. 35
25. व्यापारव्यतिरेकेण कालमेके प्रचक्षते। नित्यमेकं विभु द्रव्य परिमाणं क्रियावताम्। वा. प. 3.9.1
26. परापरादिप्रत्ययलिङ्गो व्यापक एकोऽमूर्त्तोत एवाकृतकत्वान्नित्यः कालः क्रियाव्यतिरिक्तो जन्मादिक्रियाद्वारेण भावपरिच्छेदको वैशेकेराम्नातः। वही, प्र. प्र. पृ. 494
27. चैतन्यवत् स्थितालोके दिक्कालपरिकल्पना। प्रकृतिं प्राणिनां तां हि कोऽन्यथा स्थापयिष्यति।। वा. प. 3, दि. समु. 18
28. कालविच्छेदरूपेण तदेवैकमवस्थितम्। स ह्यपूर्वापरो भागः पररुपेण लक्ष्यते।। वही 3, सा. समु. 42
29. दिक्कालौ नेश्वरादतिरिच्येते मानाभावात्। तत् तत् निमित्तविशेष समवधानवशाद् ईश्वरादेव तत् तत् कार्यविशेषाणामुत्पत्तैः। त्रिपाठी, रामसुरेश, सं. व्या. द. पृ. 207
30. Every object is perceived as existing in time though time is never perceived by itself, Sharma, P.S., Kelasamuddesha, Introduction, p. 19प
31. Anindita Niyogi, Balsev, A study of time in Indian, Philosophy, p. 64
32. The world is not self sufficient. The temporal in not the real. Radhakrishnani, Indian Philosophy, (8), Vol. 2, p. 528अ
33. In Conclusion, to an advaitin the reality of time as a separate antological is wholly superflous, no valid means of knowledge can be said to establish such a contention, Anindita Niyogi, Balsev, A Study of time in Indian Philosphy, p. 69
34. वा. 3.9.62 पर प्र. प्र., पृ. 555
35. अथ पुद्गल, एवात्र धर्मोधर्मो द्विधा नमः। कालश्च पञ्चैवेत्यजीव तत्त्वं जगौजिनः।। वर्धमान पुराण, भट्टारक सकलकीर्ती, 16.15

ISSN 976-8645

36. This isbrought out by saying that KEla has one pradesh only i.e. thetime atoms can never be combined. This explains why time cannot be classified as on AstikEya. Anindita Niyogi, Balsev, A study of Time in Indian Philosophy.
37. Rao, Rallapaalli Venkateswara, The Concept of Time in Jainism, p. 57प
38. Ibid., pp. 59-60
39. Ibid., pp. 76-77
40. Ibid., p. 79

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. तर्कसंग्रह, अन्नमभट्ट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
2. योगदर्शन, पतञ्जलि, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी 85
3. योगसूत्र, सम्पा. नारायण मिश्र, भारतीय विद्याप्रकाश दिल्ली 8
4. वाक्यपदीयम्, भर्तृहरि, तृतीय काण्ड, द्वितीयाध्याय, रघुनाथ सम्पा. अनिन्दि नियोगी बालसेव, शर्मा, वाराणसी, 79
5. A study of time in indian philosophy, Motilal Banarasi Dass, Delhi, 1999
6. Anindita Niyogi Balsev, A Study of Time in India Philosophy, Motilal Banarasi Dass, Delhi, 1999